E-Learning Material prepared by Dr. Dhananjay Vasudeo Dwivedi , Dr. Shyama Prasad Mukherjee University, Ranchi

अच्सन्धि या स्वरसन्धि (लघुसिद्धान्तकौमुदी के अनुसार)

1. **इको यणचि** (6/1/77)

इकः स्थाने यण् स्यादचि संहितायां विषये। सुधी उपास्य इति।

क) **प्रसङ्ग-**

प्रकृत सूत्र लघुसिद्धान्तकौमुदी के अच् सन्धि प्रकरण से गृहीत है।

ख) **अनुवृत्ति-**

परः सन्निकर्षः संहिता से संहिता (6/1/72)

ग) **अर्थ-**

अच् परे रहते इक् के स्थान पर यण् आदेश होता है।

घ) **व्याख्या-**

'इको यणचि' सूत्र में तीन पद हैं- इकः, यण् और अचि। 'इकः' पद 'इक्' प्रातिपदिक के षष्ठी विभक्ति एकवचन का रूप है। यण् प्रथमा विभक्ति एकवचन का रूप है और 'अचि' अच् पद के सप्तमी विभक्ति एकवचन का रूप है। इक् प्रत्याहार के अन्तर्गत इ, उ, ऋ, ऌ का ग्रहण होता है।'यण्' प्रत्याहार के अन्तर्गत य,व्, र्, ल् का ग्रहण होता है। 'अच्' प्रत्याहार के में सभी स्वरों का समावेश होता है। इस प्रकार कहा जा सकता है- संहिता के विषय में व्यवधानरहित स्वरवर्ण परे होने पर इ,उ, ऋ, ऌ के स्थान पर य्, व्, र्, ल् आदेश होते हैं।

ङ) **उदाहरण-**

सुधी+उपास्यः= सुध्युपास्यः --------सुध् ई उपास्यः सुध् य् उपास्यः---------सुध्युपास्यः

मधु+अरिः=मध्वरिः--------मध् उ अरिः---------मध् व् अरिः----------मध्वरिः

धातृ+अंशः= धात्रंशः------धात् ऋ अंशः-------धात् र् अंशः-------धात्रंशः

ऌ+आकृतिः= लाकृतिः------ ऌ आकृतिः ------ ल् आकृतिः-------लाकृतिः

च) **टिप्पणी-**

'इक्' और 'अच्' अविधीयमान हैं। अतः 'अणुदित्सवर्णस्य चाप्रत्ययः' (1/1/69) के द्वारा अपने अन्तर्गत आने वाले सवर्णों के भी ग्राहक हैं। 'यण्' विधीयमान है, अतः उसके अन्तर्गत आने वाले वर्ण केवल अपने स्वरूप का ही बोध कराते हैं।

2. तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य (1/1/66)

सप्तमीनिर्देशेन विधीयमानं कार्यं वर्णान्तरेणाव्यवहितस्य पूर्वस्य बोध्यम्।

क) **प्रसङ्ग-**

प्रकृत सूत्र लघुसिद्धान्तकौमुदी के अच् सन्धि प्रकरण से गृहीत है।

ख) **अर्थ-**

सप्तमी विभक्ति के निर्देश के द्वारा किया जाने वाला कार्य उससे अव्यवहित पूर्व वर्ण को होता है।

ग) **व्याख्या-**

सूत्रस्थ 'तस्मिन्' पद सप्तमी विभक्त्यन्त का निर्देश है। 'इति' पद अर्थनिर्देश के लिए है। 'तस्मिन्' का अर्थ हुआ-सप्तमी विभक्त्यन्त। 'निर्दिष्टे' पद विशेषण है तथा 'तस्मिन्' पद विशेष्य है। इन दोनों पदों में भावसप्तमी है। निर्दिष्ट का अर्थ है-निरन्तर उच्चरित। निरन्तर उच्चारण तभी सम्भव है जब सप्तम्यर्थ निर्देश और पूर्व के बीच कोई व्यवधान न हो। निर्दिष्टे का ग्रहण होने से पूर्वस्य का अर्थ होगा-'अव्यवहित' पूर्व के स्थान पर। इस प्रकार सूत्र का भावार्थ होगा-सप्तम्यन्त पद का उच्चारण कर जिस कार्य का विधान किया जाता है, वह कार्य व्यवधानरहित पूर्व के स्थान पर ही होता है।

घ) **उदाहरण-**

'इको यणचि' सूत्र में सप्तम्यन्त पद 'अचि' का उच्चारण कर 'इक्' के स्थान पर यण् का विधान किया गया है। प्रकृत सूत्र की सहायता से 'इक्' के स्थान पर यह यण् तभी होगा जब 'इक्' और 'अचि' के बीच में किसी वर्ण का व्यवधान न होगा। इसीलिए यद्यपि 'सुधी उपास्यः में तीन इक् हैं, किन्तु यण् आदेश धकारोत्तरवर्ती ईकार के स्थान पर ही होगा, क्योंकि यहाँ इक्-ईकार और अच्-उकार के बीच में अन्य वर्ण नहीं आया है।

ङ) **टिप्पणी-**

जो भी आदेश होता है, वह किसी वर्ण के स्थान पर ही होता है अर्थात् उसे हटाकर ही होता है।

3. **स्थानेऽन्तरतमः** (1/1/50)

प्रसङ्गे सति सदृशतम आदेशः स्यात्। 'सुध्य् उपास्यः' इति जाते।

क) **प्रसङ्ग**-

प्रकृत सूत्र लघुसिद्धान्तकौमुदी के अच् सन्धि प्रकरण से गृहीत है।

ख) **अनुवृत्ति**-

षष्ठी स्थानेयोगा से स्थाने

ग) **अर्थ**-

किसी के स्थान पर होने वाला आदेश स्थानी के अन्तरतम अर्थात् सदृशतम होता है।

घ) **व्याख्या**-

षष्ठी स्थानेयोगा सूत्र में बताया गया है कि षष्ठ्यन्त पद का अर्थ करते समय सामान्यतया 'स्थाने' जुड जाता है। यथा 'इको यणचि' सूत्र में 'इकः' का अर्थ होगा-'इकः स्थाने'। यहाँ बताया गया है कि षष्ठ्यन्त पद के प्रसंग में जो हो, उसे सदृशतम होना चाहिए। वास्तव में इस परिभाषा की आवश्यकता तभी होती है जब षष्ठी के स्थान पर एक से अधिक आदेश प्राप्त होते हैं। अतः सूत्र का तात्पर्य होगा- प्रसंग में एक से अधिक आदेश प्राप्त होने पर वही आदेश होगा जो उसके अत्यन्त सदृश होगा।

ङ) **उदाहरण**-

उदाहरण के लिए 'सुधी उपास्यः' में धकारोत्तरवर्ती इक्-ईकार के स्थान पर 'इको यणचि' से य, व्, र् और ल् ये चार आदेश प्राप्त होते हैं। इनमें से यकार ही इक्-ईकार के सदृशतम है, क्योंकि दोनों का ही स्थान तालु है। इचुयशानां तालु। अतः ईकार के स्थान पर केवल यकार ही आदेश होगा और इस प्रकार सुध् ई उपास्यः का रूप इस प्रकार बनेगा- सुध् य् उपास्यः

च) **टिप्पणी**-

शब्दों की सदृशता चार प्रकार की होती है-

स्थानकृत- जो स्थान षष्ठी का हो, वही आदेश का भी होना चाहिए।

अर्थकृत- एकार्थवाची के स्थान पर एकार्थवाची, द्व्यर्थवाची के स्थान पर द्व्यर्थवाची और बह्वर्थवाची के स्थान पर बह्वर्थवाची आदेश होता है।

प्रमाणकृत-एकमात्रिक के स्थान पर एकमात्रिक तथा द्विमात्रिक के स्थान पर द्विमात्रिक होता है।

गुणकृत- अल्पप्राण के स्थान पर अल्पप्राण और महाप्राण के स्थान पर महाप्राण आदेश होता है। इसी प्रकार विवार, संवार आदि अन्य बाह्य अथवा स्पृष्ट, ईषत्स्पृष्ट आदि आभ्यन्तरयत्नवाले के स्थान पर उसी प्रकार के यत्नवाला आदेश होता है।

जहाँ अनेक प्रकार की सदृशता प्राप्त हो, वहाँ स्थानकृत सदृशता बलवती मानी जाती है।

4. अनचि च (8/4/47)

अचः परस्य यरो द्वे वा स्तो न त्वचि। इति धकारस्य द्वित्वम्।

क) **प्रसङ्ग**-

प्रकृत सूत्र लघुसिद्धान्तकौमुदी के अच् सन्धि प्रकरण से गृहीत है।

ख) **अनुवृत्ति**-

यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा (8/4/45) से 'यरः' एवं अचो रहाभ्यां द्वे (8/4/46) से 'अचः' और 'द्वे'

ग) **अर्थ**-

'अच्' परे न होने पर 'अच्' के पश्चात् 'यर्' के स्थान पर विकल्प से द्वित्व होता है।

घ) **व्याख्या**-

अच् और यर्-ये दोनों प्रत्याहार है। अच् के अन्तर्गत सभी स्वर और यर् के अन्तर्गत हकार को छोड़कर सभी व्यञ्जन आ जाते हैं। अतः कहा जा सकता है कि यदि स्वरवर्ण परे न हो तो स्वरवर्ण के पश्चात् हकार को छोड़कर अन्य व्यञ्जन का विकल्प से द्वित्व होता है।

ङ) **उदाहरण**-

सुधी उपास्यः------सुध् ई उपास्यः------सुध् य् उपास्यः (इको यणचि एवं स्थानेऽन्तरमः से)। यहाँ स्वरवर्ण उकार के पश्चात् यर्-धकार आया है, और उसके पश्चात् कोई स्वर भी नहीं है। अतः प्रकृतसूत्र से द्वित्व होकर सुध् ध् य् उपास्यः रूप बनता है। द्वित्व के अभावपक्ष में 'सुध् य् उपास्यः' ही रहता है।

5. **झलां जश् झशि** (8/4/53)

स्पष्टम्। इति पूर्वधकारस्य दकारः।

क) **प्रसङ्ग**-

प्रकृत सूत्र लघुसिद्धान्तकौमुदी के अच् सन्धि प्रकरण से गृहीत है।

ख) **अर्थ**-

झश् वर्ण परे रहते झल् वर्ण के स्थान पर जश् वर्ण होता है।

ग) **व्याख्या**-

झश्, झल् और जश् प्रत्याहार हैं। झश् के अन्तर्गत वर्गों के तृतीय और चतुर्थ वर्ण, झल के अन्तर्गत वर्गों के प्रथम, द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ वर्ण तथा श, ष, स, ह् और जश् के अन्तर्गत वर्गों के तृतीय वर्ण आते हैं। इस प्रकार कहा जा सकता है-वर्गों के तृतीय और चतुर्थ वर्ण परे होने पर वर्गों के प्रथम, द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ वर्ण तथा श, ष, स, ह् के स्थान पर वर्गों के तृतीय वर्ण (ज, ब, ग, ड, द्) आदेश होते हैं।

घ) **उदाहरण**-

'सुधी उपास्यः'------'सुध् ई उपास्यः'------ 'सुध् य् उपास्यः' (इको यणचि एवं स्थानेऽन्तरमः सूत्रों से)-----'सुध् ध् य् उपास्यः' (अनचि च सूत्र से)-------यहाँ 'सुध् ध् य् उपास्यः' में उकारोत्तरवर्ती धकार झल् है और उसके पश्चात् झश्-धकार भी आया है। अतः प्रकृत सूत्र से झल् –उकारोत्तरवर्ती धकार के स्थान पर वर्गों का तृतीय वर्ण आदेश होगा। स्थानेऽन्तरतमः से दन्तस्थानीय धकार के स्थान पर दन्तस्थानीय तृतीय वर्ण दकार ही होता है और इस प्रकार रूप बनता है-'सु द् ध् य् उपास्यः'। 'सुध् य् उपास्यः' में झश् परे न होने के कारण कोई परिवर्तन नहीं होता है।

6. **एचोऽयवायावः** (6/1/78)

एचः क्रमाद् अय्, अव्, आय्, आव् एते स्युरचि।

क) **प्रसङ्ग**-

प्रकृत सूत्र लघुसिद्धान्तकौमुदी के अच् सन्धि प्रकरण से गृहीत है।

ख) **अनुवृत्ति**-

'इको यणचि' से 'अचि' और 'संहितायाम्'

ग) **अर्थ**-

संहिता के विषय में अच् परे रहते एच् के स्थान पर अय्, अव्, आय्, आव् आदेश होता है।

घ) **व्याख्या**-

'एच्' प्रत्याहार है और उसके अन्तर्गत ए, ओ, ऐ तथा औ वर्ण आते हैं। इस प्रकार सूत्र का भावार्थ हुआ-संहिता के विषय में 'अच्' (स्वर वर्ण) परे होने पर ए, ओ, ऐ और औ के स्थान पर अय्, अव्, आय् और आव् आदेश होते हैं।'यथासंख्यमनुदेशः समानाम्' इस सूत्र से आदेश क्रम से होता है।

ङ) **उदाहरण**-

हरे+ए---------- हर् ए ए----------हर् अय् ए---------हरये

विष्णो+ए----------विष्ण् ओ ए----------विष्ण् अव् ए-------विष्णवे

नै+अकः----------न् ऐ अकः----------न् आय् अकः--------नायकः

पौ+अकः----------प् औ अकः----------प् आव् अकः----------पावकः

7. वान्तो यि प्रत्यये (6/1/79)

यकारादौ प्रत्यये परे ओदौतोरव् आव् एतौ स्तः। गव्यम्। नाव्यम्। (वा०) अध्वपरिमाणे च।

क) **प्रसङ्ग-**

प्रकृत सूत्र लघुसिद्धान्तकौमुदी के अच् सन्धि प्रकरण से गृहीत है।

ख) **अनुवृत्ति-**

एचोऽयवायावः से एचः, इको यणचि से अचि, संहितायाम्

ग) **अर्थ-**

संहिता के विषय में यकारि प्रत्यय परे होने पर भी ओकार और औकार के स्थान पर क्रमशः 'अव्' और 'आव्' आदेश होते हैं।

घ) **व्याख्या-**

सूत्रगत 'प्रत्यये' का विशेषण 'यि' है। य् के सप्तमी एकवचन का रूप है 'यि'। यहाँ 'य' का अर्थ है-'य्' जिसके आदि में हो। अतएव 'य्' प्रत्यय का अर्थ हुआ-"वह प्रत्यय जिसके आदि में 'य्' वर्ण हो। उदाहरण के लिए 'यत्' प्रत्यय अकारादि है। 'वान्तः' का अर्थ है- जिसके अन्त में 'व्' हो। प्रकृतस्थल में 'अव्' और 'आव्' ये दोनों आदेश 'वान्त' हैं क्योंकि इन दोनों के अन्त में 'व्' है। 'वान्तः' पद प्रथमा विभक्ति में है अतएव उससे बोधित अव् तथा आव्, ये दोनों विधेय हैं और किसी के स्थान पर आदेश के रूप में प्राप्त होंगे। इस प्रकार कहा जा सकता है कि यदि 'ओ' और 'औ' के पश्चात् यकारादि प्रत्यय आये तो 'ओ' और 'औ' के स्थान पर वान्त आदेश ('अव्' और 'आव्') हो जाते हैं।

ङ) **उदाहरण-**

गो+यम्----------ग् ओ यम्----------ग् अव् यम्------गव्यम्

नौ+यम्----------न् औ यम्----------न् आव् यम्------नाव्यम्

च) **टिप्पणी-**

यह सूत्र वास्तव में 'एचोऽयवायावः' का विस्तारक मात्र है। 'एचोऽयवायावः' में केवल स्वर वर्ण परे होने पर ही ओकार और औकार के स्थान पर क्रमशः 'अव्' और 'आव्' आदेश हुआ है। यहाँ उसके अतिरिक्त यकारादि प्रत्यय परे होने पर भी ओकार और औकार के स्थान पर 'अव्' और 'आव्' का विधान किया गया है।

(वा०) अध्वपरिमाणे च- मार्ग के परिमाण अर्थ में 'यूति' से परे होने पर 'गो' शब्द के ओकार के स्थान पर वकारान्त 'अव्' आदेश होता है। उदाहरण के लिए 'गो+युतिः' में यूति परे होने के कारण 'गो' शब्द के ओकार के स्थान पर 'अव्' आदेश होता है।

गो+यूतिः----ग् ओ यूतिः-----ग् अव् यूतिः---गव्यूतिः।

8. **अदेङ् गुणः** (1/1/2)

अत् एङ् च गुणसंज्ञः स्यात्।

क) **प्रसङ्ग**-

प्रकृत सूत्र लघुसिद्धान्तकौमुदी के अच् सन्धि प्रकरण से गृहीत है।

ख) **अर्थ**-

अ और एङ् गुणसंज्ञक होते हैं।

ग) **व्याख्या**-

'एङ्' प्रत्याहार है और उसके अन्तर्गत 'ए' और 'ओ' वर्ण आते हैं। इस प्रकार सूत्र का भावार्थ हुआ- अ, ए और ओ को 'गुण' कहते हैं।

घ) **टिप्पणी**-

सूत्रस्थ अत् से मात्र ह्रस्व 'अ' का बोध होता है। ऐसा 'तपरस्तत्कालस्य' सूत्र से होता है जिसके अनुसार 'त्' जिस स्वर के बाद में हो वह, और 'त्' के बाद में जो स्वर हो वह, अपने समान उच्चारणकाल वाले वर्ण का ही बोधक होता है। यदि किसी स्वर के पूर्व या पश्चात् 'त्' श्रुत न हो तो वह अपने सभी मात्राओं वाले प्रभेदों का बोधक होगा।

डा० धनञ्जय वासुदेव द्विवेदी

9. आद्गुणः (6/1/87)

अवर्णादचि परे पूर्वपरयोरेको गुण आदेशः स्यात्। उपेन्द्रः। गङ्गोदकम्।

क) **प्रसङ्ग**-

प्रकृत सूत्र लघुसिद्धान्तकौमुदी के अच् सन्धि प्रकरण से गृहीत है।

ख) **अनुवृत्ति**-

'संहितायाम्' (6/1/72), 'इको यणचि' से अचि' (6/1/77) एवं 'एकः पूर्वपरयोः' (6/1/84)

ग) **अर्थ**-

संहिता के विषय में अवर्ण से अच् परे होने पर पूर्व और पर के स्थान पर एक गुण आदेश होता है।

घ) **व्याख्या**-

यदि ह्रस्व या दीर्घ अकार के बाद कोई स्वरवर्ण हो तो पूर्व अवर्ण और पर (बाद में आने वाला) स्वरवर्ण दोनों के स्थान पर एक ही गुण अ, ए या ओ आदेश होता है। यह आदेश स्थानेऽन्तरतमः परिभाषा से होता है।

ङ) **उदाहरण**-

उप+इन्द्रः---------उप् अ इ न्द्रः----- उप् ए न्द्रः--------उपेन्द्रः

गङ्गा+उदकम्------गङ्ग् आ उ दकम्-------गङ्ग् ओ दकम्--------गङ्गोदकम्

च) **टिप्पणी**-

इस सूत्र के दो अपवाद हैं- 'अकः सवर्णे दीर्घः' और 'वृद्धिरेचि'। इस प्रकार इस सूत्र का व्यवहारोपयोगी अर्थ होगा- अवर्ण (ह्रस्व या दीर्घ 'अ') से इकार, उकार, ऋकार और ऌकार परे होने पर पूर्व-पर के स्थान पर गुण आदेश होता है।

स्थानेऽन्तरतमः परिभाषा के अनुसार पूर्व-पर के स्थान पर गुण आदेश इस प्रकार होंगे-

अ या आ+इ या ई= ए

अ या आ+उ या ऊ=ओ

अ या आ+ऋ=अर्

अ या आ+ऌ= अल्

10. उपदेशेऽजनुनासिक इत् (1/3/2)

उपदेशेऽनुनासिकोऽज इत्संज्ञः स्यात्। प्रतिज्ञानुनासिक्याः पाणिनीयाः। लण्सूत्रस्थाऽवर्णेन सहोच्चार्यमाणो रेफो रलयोः संज्ञा।

क) **प्रसङ्ग**-

प्रकृत सूत्र लघुसिद्धान्तकौमुदी के अच् सन्धि प्रकरण से गृहीत है।

ख) **अर्थ**-

जो 'अच्' उपदेश अवस्था में अनुनासिक हो, उसकी इत्संज्ञा होती है।

ग) **व्याख्या**-

वैयाकरणों का मत है कि महामुनि पाणिनि ने अपने व्याकरण में अनुनासिक स्वरों पर चन्द्रबिन्दु लगाया था, किन्तु अब वह अनुनासिक पाठ लुप्त हो गया है। अब तो अनुनासिक स्वर का ज्ञन केवल प्रतिज्ञा से होता है- प्रतिज्ञानुनासिक्याः पाणिनीयाः। गुरुपरम्परा से जो स्वर अनुनासिक माना जा रहा हो, उसे ही अनुनासिक मानना चाहिए।

घ) **टिप्पणी**-

शास्त्रवाक्यों को उपदेश कहते हैं। सूत्रपाठ, खिलपाठ आदि उपदेश कहे जाते हैं। उपदेश में होने वाले अच् की इत् संज्ञा होती है।

ङ) **उदाहरण**-

एधँ- यहाँ धकारोत्तरवर्ती अकार अनुनासिक पठित है। अतः इसकी इत्संज्ञा हुई।

11. उरण् रपरः (1/1/51)

ऋ इति त्रिंशतः संज्ञेत्युक्तम्। तत्स्थाने योऽण्, स रपरः सन्नेव प्रवर्तते। कृष्णर्द्धि। तवल्कारः।

क) **प्रसङ्ग**-

प्रकृत सूत्र लघुसिद्धान्तकौमुदी के अच् सन्धि प्रकरण से गृहीत है।

ख) **अनुवृत्ति**-

षष्ठी स्थानेयोगा (1/1/49) से स्थाने एवं स्थानेऽन्तरतमः (1/1/50) से स्थाने

ग) **अर्थ**-

ऋ वर्ण के स्थान पर प्राप्त होता हुआ अण् (अ, इ या उ) रकार-परक या लकार-परक होता है।

घ) **व्याख्या**-

तात्पर्य यह है कि ऋ वर्ण (ऋ और ऌ के सभी भेद) के स्थान पर यदि किसी दूसरे सूत्र से अ, इ या उ का विधान होता है, तो वह अ, इ और उ रकार-परक हो अर्, इर् या उर् के रूप में अथवा लकारपरक से अल्, इल् या उल् रूप में प्रयुक्त होता है। 'स्थानेऽन्तरतमः' से ऋकार के स्थान पर रकार-परक (अर्, इर् और उर्) और ऌकार के स्थान पर लकार-परक (अल्, इल् या उल्) रूप प्रयक्त होगा।

ङ) **उदाहरण**-

कृष्ण+ऋद्धिः----------कृष्ण् अ ऋ द्धिः----------कृष्ण् अर् द्धिः----------कृष्णर्द्धिः

तव+ऌकारः----------तव् अ ऌ कारः---------तव् अल् कारः----------तवल्कारः

12. **लोपः शाकल्यस्य** (8/3/19)

अवर्णपूर्वयोः पदान्तयोर्यवयोर्लोपो वाऽशि परे।

क) **प्रसङ्ग**-

प्रकृत सूत्र लघुसिद्धान्तकौमुदी के अच् सन्धि प्रकरण से गृहीत है।

ख) **अनुवृत्ति**-

'भोभगोअघोअपूर्वस्य' (8/3/17) से 'अपूर्वस्य' और 'अशि', 'व्योर्लघुप्रयत्नतरः शाकटायनस्य' से 'व्योः' तथा पदस्य (8/1/16)

ग) **अर्थ**-

शाकल्य आचार्य के मत में अपूर्वक पदान्त वकार तथा यकार का लोप होता है, अश् परे रहते।

घ) **व्याख्या**-

'अपूर्वस्य' 'व्योः' का विशेषण है, अतः वचन-विपरिणाम हो जाता है। इसी प्रकार'व्योः' का विशेषण होने से 'पदस्य' भी तदन्त होकर द्विवचन में विपरिणत हो जाता है। 'अश्' प्रत्याहार है। इस प्रकार सूत्र का भावार्थ होगा-अश् (स्वर वर्ण, वर्गों के तृतीय, चतुर्थ और पञ्चम वर्ण तथा ह्, य्, व्, र् या ल्) परे होने पर अवर्णपूर्वक (जिसके पहले 'अ' या 'आ' हो) पदान्त यकार और वकार का लोप होता है।

ङ) **उदाहरण**-

यह कार्य शाकल्य के मत से होने के कारण विकल्प से होता है। उदाहरण के लिए 'हरे+इह' और विष्णो+इह में 'एचोऽयवायावः' से 'अय्' और 'अव्' आदेश हो क्रमशः 'हर् अय् इह'= 'हरय् इह' और 'विष्ण् अव् इह'='विष्णव् इह' रूप बनते हैं। यहाँ पदान्त यकार और वकार के अपूर्व अवर्ण-अकार है और बाद में अश्-इकार भी आया है। अतः प्रकृत सूत्र से इन पदान्त यकार और वकार का लोप हो क्रमशः 'हर इह' और 'विष्ण इह' रूप बनते हैं। लोपाभाव पक्ष में 'हरय् इह='हरयिह' और 'विष्णव् इह'= 'विष्णविह' रूप सिद्ध होते हैं।

13. पूर्वत्राऽसिद्धम् (8/2/1)

सपादसप्ताध्यायीं प्रति त्रिपाद्यसिद्धा, त्रिपाद्यामपि पूर्वं प्रति परं शास्त्रमसिद्धम्। हर इह हरयिह, विष्ण इह विष्णविह।

क) **प्रसङ्ग-**

प्रकृत सूत्र लघुसिद्धान्तकौमुदी के अच् सन्धि प्रकरण से गृहीत है।

ख) **अर्थ-**

सवा सात अध्याय के प्रति त्रिपादी असिद्ध है और त्रिपादी में भी पूर्व के प्रति परशास्त्र असिद्ध है।

ग) **व्याख्या-**

पाणिनि मुनि ने 'अष्टाध्यायी' बनाई है। उसमें आठ अध्याय हैं। प्रत्येक अध्याय में चार-चार पाद हैं। पहले सात अध्याय और आठवें अध्याय का प्रथम पाद 'सपादसप्ताध्यायी' कहे जाते हैं, तथा आठवें अध्याय के शेष तीन पाद 'त्रिपादी' कहे जाते हैं। यह सूत्र आठवें अध्याय के दूसरे पाद का पहला सूत्र है। इस सूत्र के दो कार्य हैं-

सपादसप्ताध्यायी के प्रति त्रिपादी असिद्ध है।

उस त्रिपादी में भी पूर्वसूत्र के प्रति परसूत्र असिद्ध होता है।

घ) **उदाहरण-**

उदाहरण के लिए 'हर इह' एवं 'विष्ण इह' में क्रमशः यकार और वकार का लोप 'लोपः शाकल्यस्य' से होता है और गुणादेश 'आद्गुणः' से। 'लोपः शाकल्यस्य' आठवें अध्याय के तृतीय पाद का सूत्र है। 'आद्गुणः' छठे अध्याय के प्रथम पाद का सूत्र है। अतः पर होने के कारण 'आद्गुणः' के प्रति 'लोपः शाकल्यस्य' असिद्ध है। परिणामतः 'आद्गुणः' की दृष्टि में 'लोपः शाकल्यस्य' से यकार और वकार का लोप न होने के समान होगा। अतः यहाँ आद्गुणः सूत्र प्रवृत्त नहीं होगा।

ङ) **टिप्पणी-**

यह अधिकार सूत्र है।

14. वृद्धिरादैच् (1/1/1)

आदैच्च वृद्धिसंज्ञः स्यात्।

क) **प्रसङ्ग**-

प्रकृत सूत्र लघुसिद्धान्तकौमुदी के अच् सन्धि प्रकरण से गृहीत है।

ख) **अर्थ**-

तद्धावित तथा अतद्धावित दोनों प्रकार के 'आ' दीर्घ ऐकार और दीर्घ औकार वृद्धि संज्ञक होते हैं।

ग) **व्याख्या**-

तद्धावित का अर्थ है-वृद्धि शब्द से होने वाला। अतद्धावित का अर्थ है-वृद्धि शब्द से न होने वाला अर्थात् स्वतः उत्पन्न। आ का अर्थ है-दीर्घ आकार। ऐच् एक प्रत्याहार है, जो ऐ तथा औ- इन दो वर्णों की संज्ञा है। आ, ऐ तथा औ-इनमें प्रत्येक वर्ण की वृद्धि संज्ञा होती है। चाहे ये वर्ण तद्धावित हों या अतद्धावित हों।

घ) **टिप्पणी**-

यह एक संज्ञासूत्र है। संज्ञासूत्र में दो पद होते हैं- एक संज्ञा तथा दूसरा संज्ञी। प्रकृत सूत्र में 'वृद्धि' पद संज्ञा है तथा 'आदैच्' पद संज्ञी है।

15. **वृद्धिरेचि** (6/1/88)

आदेचि परे वृद्धिरेकादेशः स्यात्। गुणापवादः। कृष्णौकत्वम्। गङ्गौघः।देवैश्वर्यम्। कृष्णौत्कण्ठ्यम्।

क) **प्रसङ्ग**-

प्रकृत सूत्र लघुसिद्धान्तकौमुदी के अच् सन्धि प्रकरण से गृहीत है।

ख) **अनुवृत्ति**-

आद्गुणः (6/1/87) से आत्, एकः पूर्वपरयोः (6/1/84) तथा संहितायाम् (6/1/72)

ग) **अर्थ**-

संहिता के विषय में अवर्ण से एच् परे होने पर पूर्व और पर के स्थान पर एक वृद्धि आदेश होता है।

घ) **व्याख्या**-

'एच्' प्रत्याहार है और उसके अन्तर्गत ए, ओ, ऐ और औ-ये चार वर्ण आते हैं। अतः कहा जा सकता है- यदि अवर्ण (ह्रस्व या दीर्घ 'अ') के पश्चात् एकार, ऐकार, ओकार या औकार आवे तो पूर्व (अवर्ण) और पर (ए, ऐ, ओ, औ)- दोनों के स्थान पर एक ही वृद्धि होती है। 'स्थानेऽन्तरतमः' परिभाषा से 'अवर्ण + ए या ऐ' के स्थान पर दीर्घ ऐकार और 'अवर्ण+ओ या औ' के स्थान पर दीर्घ औकार होगा।

ङ) **उदाहरण**-

कृष्ण + एकत्वम्----------कृष्ण् अ ए कत्वम्---------कृष्ण् ऐ कत्वम्--------कृष्णैकत्वम्।

देव + ऐश्वर्यम्----------देव् अ ऐ श्वर्यम्----------देव् ऐ श्वर्यम्----------देवैश्वर्यम्।

गङ्गा + ओघः----------गङ्ग् आ ओ घः----------गङ्ग् औ घः----------गङ्गौघः।

कृष्ण + औत्कण्ठ्यम्-------कृष्ण् अ औ त्कण्ठ्यम्------- कृष्ण् औ त्कण्ठ्यम्------कृष्णौत्कण्ठ्यम्।

च) **टिप्पणी**-

वृद्धिरेचि आद्गुणः का अपवाद है। अपवाद विधि बलवान् होती है। इसलिए 'वृद्धिरेचि' जहाँ प्राप्त होगा, वहाँ आद्गुणः प्रवृत्त नहीं होगा।

16. उपसर्गाः क्रियायोगे (1/4/59)

प्रादयः क्रियायोगे उपसर्गसंज्ञाः स्युः। प्र, परा, अप, सम्, अनु, अव, निस्, निर्, दुस्, दुर्, वि, आङ्, नि, अधि, अपि, अति, सु, उद्, अभि, प्रति, परि, उप-एते प्रादयः।

क) **प्रसङ्ग-**

प्रकृत सूत्र लघुसिद्धान्तकौमुदी के अच् सन्धि प्रकरण से गृहीत है।

ख) **अनुवृत्ति-**

प्रादयः (1/4/58)

ग) **अर्थ-**

क्रिया के योग में 'प्र' आदि की उपसर्गसंज्ञा होती है।

घ) **व्याख्या-**

प्रादि 22 हैं- प्र, परा, अप, सम्, अनु, अव, निस्, निर्, दुस्, दुर्, वि, आङ्, नि, अधि, अपि, अति, सु, उद्, अभि, प्रति, परि और उप। इनमें से जिस किसी का योग क्रिया के साथ होता है, तब वह उपसर्ग कहलाता है।

ङ) **उदाहरण-**

उदाहरण के लिए 'उप एधते'= 'उपैधते' में 'उप' का योग क्रिया एधते के साथ हुआ है, अतः प्रकृत सूत्र से 'उप' यहाँ उपसर्ग संज्ञक होगा।

17. एङि पररूपम् (6/1/94)

आदुपसर्गाद् एङादौ धातौ परे पररूपमेकादेशः स्यात्। प्रेजते। उपोषति।

क) **प्रसङ्ग**-

प्रकृत सूत्र लघुसिद्धान्तकौमुदी के अच् सन्धि प्रकरण से गृहीत है।

ख) **अनुवृत्ति**-

'आद्गुणः' (6/1/87) से 'आत् ', 'उपसर्गाद् ऋति धातौ' (6/1/91) से 'उपसर्गात्' और 'धातौ' तथा 'एकः पूर्वपरयोः' (6/1/84)

ग) **अर्थ**-

अवर्णान्त उपसर्ग के बाद यदि एङादि धातु हो तो अवर्ण एवं 'एङ' के स्थान में पररूप एकादेश-'एङ्'-हो जाता है।

घ) **व्याख्या**-

'आत्' 'उपसर्गात्' का विशेषण होता है, अतः उसमें तदन्तविधि हो जाती है। सूत्रस्थ 'एङ्' प्रत्याहार है और इसके अन्तर्गत ए और ओ-ये दो वर्ण आते हैं। धातौ का विशेषण होने से उसमें तदादि विधि हो जाती है। इस प्रकार सूत्र का भावार्थ हुआ-यदि अवर्णान्त उपसर्ग (जिसके अन्त में 'अ' या 'आ' हो) के पश्चात् एकारादि या ओकारादि धातु आवे तो पूर्व और पर वर्ण ('अ' या 'आ' + 'ए' या 'ओ') के स्थान पर पररूप ('ए' या 'ओ') आदेश होता है।

ङ) **उदाहरण**-

प्र + एजते------- प्र् अ ए जते----------प्र् ए जते--------प्रेजते

उप + ओषति-----उप् अ ओ षति---------उप् ओ षति-----उपोषति

च) **टिप्पणी**-

यह सूत्र 'वृद्धिरेचि' से प्राप्त वृद्धि का अपवाद है।

18. अचोऽन्त्यादि टि (1/1/64)

अचां मध्ये योऽन्त्यः स आदिर्यस्य तट्टिसंज्ञं स्यात्।

(वा०) शकन्ध्वादिषु पररूपं वाच्यम्। तच्च टेः। शकन्धुः।कर्कन्धुः।मनीषा।आकृतिगणोऽयम्। मार्तण्डः।

क) **प्रसङ्ग-**

प्रकृत सूत्र लघुसिद्धान्तकौमुदी के अच् सन्धि प्रकरण से गृहीत है।

ख) **अर्थ-**

अचों के मध्य में अन्त्य अच् जिसके आदि में हो, ऐसा शब्द-स्वरूप 'टि' संज्ञक होता है।

ग) **व्याख्या-**

'अचः' में निर्धारण षष्ठी है। 'अन्त्य' शब्द 'अच्' का विशेषण है। अन्त्यादि का अर्थ है- अन्त्य (अच्) है आदि में जिसके (ऐसा समुदाय)। इस प्रकार सूत्र का भावार्थ हुआ- अचों के मध्य में जो अन्त्य अच्, वह है आदि में जिसके, उस सम्पूर्ण समुदाय की 'टि' संज्ञा होती है।

घ) **उदाहरण-**

उदाहरण के लिए 'मनस्' का अन्त्य अच् नकारोत्तरवर्ती अकार है। यह सकार के पूर्व या आदि में आया है।अतः प्रकृत सूत्र से यहाँ 'अस्' की 'टि' संज्ञा होगी। अब प्रश्न उठता है कि जहाँ अन्त्य अच् के पश्चात् कोई वर्ण नहीं होगा, वहाँ 'टि' संज्ञा किस प्रकार होगी? इसका उत्तर यह है कि वहाँ 'व्यपदेशिवद्भाव' न्याय से अन्तिम अच् की ही 'टि' संज्ञा होगी।

ङ) **स्पष्टीकरण-**

स्पष्टीकरण के लिए सूत्रार्थ को इस रूप में प्रकट किया जा सकता है-

शब्द के अन्तिम स्वर के पश्चात् यदि कोई व्यञ्जन आवे तो उस अन्तिम स्वर और और व्यञ्जन के सम्मिलित रूप को 'टि' कहते हैं, यथा- 'मनस्' में 'अस्' 'टि' संज्ञक है।

शब्द के अन्तिम स्वर के पश्चात् यदि कोई व्यञ्जन न आवे तो उस अन्तिम स्वर को ही 'टि' कहते हैं। यथा- 'शक' में अन्त्य अकार ही 'टि' संज्ञक है।

च) **टिप्पणी-**

वार्तिक- शकन्ध्वादिषु पररूपं वाच्यम्। यह 'एङि पररूपम्' पर वार्तिक है। अर्थ है- शकन्धु आदि के विषय में पररूप कहना चाहिए। किन्तु यह पररूप किसके स्थान पर होता है-इसका पता सूत्र से नहीं चलता। प्रसंगवश 'इको यणचि' से 'अचि' तथा 'आद्गुणः' से 'आत्' की अनुवृत्ति प्राप्त होती है। इसके साथ ही साथ 'एकः पूर्वपरयोः' का अधिकार प्राप्त होता है। 'शकन्धु' आदि आकृतिगण है और उसके अन्तर्गत 'मनीषा' और 'पतञ्जलि' आदि शब्द आते हैं। इस प्रकार प्रसंगानुसार सूत्र का अर्थ है- 'अवर्ण से अच् परे होने पर शकन्धु आदि के विषय में पूर्व-अवर्ण और पर-अच् के स्थान पर पररुप एकादेश होता है। इस अर्थ से

मनीषा और पतञ्जलि अर्थ सिद्ध नहीं होते। इस कारण आचार्यों से इस वार्तिक का अर्थ इस प्रकार किया है-'शकन्धु आदि के विषय में पूर्व-टि और पर अच् के स्थान पर पररूप (पर-अच्) आदेश होता है।

उदाहरण-

शक + अन्धुः------ शक् अ अ न्धुः-------शक् अ न्धुः----- शकन्धुः

पतत् + अञ्जलिः----- पत् अत् अ ञ्जलिः-------पत् अ ञ्जलिः------पतञ्जलिः

मनस् + ईषा----------मन् अस् ई षा----------मन् ई षा----------मनीषा

डा० धनञ्जय वासुदेव द्विवेदी

19. अकः सवर्णे दीर्घः (6/1/101)

अकः सवर्णेऽचि परे पूर्वपरयोर्दीर्घ एकादेशः स्यात्। दैत्यारिः। श्रीशः।विष्णूदयः।होतृकारः।

क) **प्रसङ्ग**-

प्रकृत सूत्र लघुसिद्धान्तकौमुदी के अच् सन्धि प्रकरण से गृहीत है।

ख) अनुवृत्ति-

परः सन्निकर्षः संहिता (6/1/72) से संहिता, इको यणचि (6/1/77) से अचि, एकः पूर्वपरयोः (6/1/84)

ग) **अर्थ**-

संहिता के विषय में अक् से उत्तर सवर्ण अच् परे रहते पूर्व व पर दोनों के स्थान पर दीर्घ एकादेश होता है।

घ) **व्याख्या**-

'अचि' का अन्वय सूत्रस्थ 'सवर्णे' से होता है। 'अक्' और 'अच्' प्रत्याहार हैं। 'अक्' के अन्तर्गत अ, इ, उ, ऋ और ऌ तथा 'अच्' के अन्तर्गत सभी स्वर-वर्ण आ जाते हैं। इस प्रकार सूत्र का भावार्थ होगा-अ, इ, उ, ऋ, या ऌ के पश्चात् यदि सवर्ण स्वर-वर्ण हो, तो पूर्व और पर के स्थान पर दीर्घ एकादेश होता है।

ङ) **स्पष्टीकरण**-

तुल्यास्यप्रयत्नं सवर्णम् सूत्र से अ का सवर्ण अ, इ का सवर्ण इ, उ का सवर्ण उ, ऋ का सवर्ण ऋ और ऌ का सवर्ण ऌ होगा। यहाँ ध्यातव्य है कि अ, इ, उ आदि से केवल ह्रस्व का भी ग्रहण न करना चाहिए। अविधीयमान होने से दीर्घ आदि अपने सभी भेदों के बोधक हैं। इस प्रकार 'अ' के पश्चात् 'अ' कहने का अभिप्राय ह्रस्व या दीर्घ 'अ' के पश्चात् ह्रस्व या दीर्घ 'अ' से है। 'स्थानेऽन्तरतमः' परिभाषा से पूर्व और पर के स्थान पर दीर्घ आदेश इस प्रकार होंगे-

अ या आ + अ या आ= आ

इ या ई + इ या ई= ई

उ या ऊ+ उ या ऊ= ऊ

ऌ या ॡ + ऌ या ॡ= ॡ

ऋ या ॠ + ऋ या ॠ=ॠ

च) **उदाहरण**-

दैत्य + अरिः = दैत्य् अ अ रिः= दैत्य् आ रिः= दैत्यारिः।

श्री + ईशः = श्र् ई ई शः= श्र् ई शः=श्रीशः।

विष्णु + उदयः= विष्ण् उ उ दयः= विष्ण् ऊ दयः= विष्णूदयः

होतृ + ऋकारः = होत् ऋ ऋ कारः= होत् ॠ कारः= होतृकारः।

छ) **टिप्पणी-**

अवर्ण के विषय में यह सूत्र आद्गुणः का तथा अन्यत्र 'इको यणचि' का अपवाद है।

डा० धनञ्जय वासुदेव द्विवेदी

20. एङः पदान्तादति (6/1/109)

पदान्तादेङोऽति परे पूर्वरूपमेकादेशः स्यात्। हरेऽव। विष्णोऽव।

क) **प्रसङ्ग**-

प्रकृत सूत्र लघुसिद्धान्तकौमुदी के अच् सन्धि प्रकरण से गृहीत है।

ख) **अनुवृत्ति**-

'अमि पूर्वः' (6/1/107) से पूर्वः, 'एकः पूर्वपरयोः' (6/1/84)

ग) **अर्थ**-

पदान्त 'एङ' के बाद ह्रस्व 'अ' हो तो एङ् (ए, ओ) तथा अ, दोनों के स्थान पर पूर्वरूप एकादेश हो जाता है।

घ) **व्याख्या**-

'एङ्' प्रत्याहार है और उसके अन्तर्गत 'ए' और 'ओ' वर्ण आते हैं। इस प्रकार सूत्र का भावार्थ होगा-यदि पदान्त 'ए' या 'ओ' के पश्चात् ह्रस्व अकार हो तो पूर्व और पर (ए या ओ + अ) के स्थान पर पूर्वरूप (ए या ओ) एकादेश होता है।

ङ) **उदाहरण**-

हरे + अव = हर् ए अ व = हर् ए व= हरेव या हरेऽव (ऽ-यह चिह्न लगाना या न लगाना अपनी इच्छा पर निर्भर है। यह केवल इतना ही सूचित करता है कि यहाँ पहले से अकार है।)

विष्णो + अव= विष्ण् ओ अ व= विष्ण् ओ व= विष्णोव या विष्णोऽव

21. प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम् (6/14/125)

एतेऽचि प्रकृत्या स्युः। आगच्छ कृष्ण ३ अत्र गौश्चरति।

क) **प्रसङ्ग-**

प्रकृत सूत्र लघुसिद्धान्तकौमुदी के अच् सन्धि प्रकरण से गृहीत है।

ख) **अनुवृत्ति-**

प्रकृत्यान्तःपादमव्यपरे (6/1/115) से 'प्रकृत्या'

ग) **अर्थ-**

अच् परे होने पर प्लुत और प्रगृह्य प्रकृति से रहते हैं अर्थात् सन्धि कार्य नहीं होता है।

घ) **व्याख्या-**

प्लुत और प्रगृह्य के पश्चात् स्वर होने पर सन्धिकार्य नहीं होता, वे स्वर ज्यों के त्यों अपरिवर्तित या मूल रूप में वर्तमान रहते हैं।

ङ) **उदाहरण-**

आगच्छ कृष्ण ३ अत्र गौश्चरति- यहाँ णकारोत्तरवर्ती प्लुत अकार और तत्परवर्ती 'अ' दोनों के स्थान में 'अकः सवर्णे दीर्घः' से दीर्घ प्राप्त था किन्तु प्लुत होने के कारण प्रकृत सूत्र से प्रकृतिभाव हो गया।

22. ईदूदेद् द्विवचनं प्रगृह्यम् (1/1/11)

ईदूदेदन्तं द्विवचनं प्रगृह्यसंज्ञं स्यात्।

क) **प्रसङ्ग-**

प्रकृत सूत्र लघुसिद्धान्तकौमुदी के अच् सन्धि प्रकरण से गृहीत है।

ख) **अर्थ-**

ईकारान्त, ऊकारान्त और एकारान्त द्विवचन प्रगृह्यसंज्ञक होता है।

ग) **व्याख्या-**

यदि किसी शब्द का द्विवचन ईकारान्त, ऊकारान्त या एकारान्त होगा तो वह 'प्रगृह्य संज्ञक होगा। यह प्रगृह्य संज्ञा अन्त्य ईकार, ऊकार या एकार की ही होगी।

घ) **स्पष्टीकरण-**

'ईत्', 'ऊत्' एवं 'एत्' का अर्थ है- 'ई', 'ऊ' और 'ए' क्योंकि इन स्वरों से परे तकार है।

ङ) **उदाहरण-**

उदाहरण के लिए 'हरी' शब्द 'हरि' का द्विवचन है और ईकारान्त भी। इसी प्रकार 'विष्णू' शब्द 'विष्णु' का ऊकारान्त द्विवचन होने से और 'गङ्गे' शब्द 'गङ्गा' का एकारान्त द्विवचन होने से 'प्रगृह्य' संज्ञक हैं, अर्थात् इनके ऊकार और एकार की 'प्रगृह्य' संज्ञा होती है। इन प्रगृह्य-संज्ञक ईकार, ऊकार और एकार के पश्चात् स्वर-वर्ण आने पर 'प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम्' से सन्धिकार्य नहीं होता। यथा हरी एतौ, विष्णू इमौ और गङ्गे अमू।